भोजपुरी लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना एवं संरक्षण

डॉ0 ज्योति सिनहा,

प्रवक्ता (संगीत विभाग),
भारती महिला पी0जी0 कालेज,
भारती नगर, जौनपुर (उ0प्र0)

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के विभिन्न अंगों में लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जब से मानव समाज है तभी से लोक गीतों का भी इतिहास है। हमारे लोकगीत, लोक जीवन के समस्त तत्वों को उभारने वाले सीधे–सादे, सच्ची भावनाओं को प्रगट करने वाले गीत है। इन लोकगीतों में भारतीय संस्कृति की आधारशिला, लोक–संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। समाज की यथार्थ दशा का चित्रण इनमें होता है तथा इनके माध्यम से अपनी परम्परा, लोक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाकर, लोक संस्कृति को संरक्षित करना इसका परम् उद्देश्य है। यदि किसी देश की सभ्यता–संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहां के लोकगीतों का अध्ययन करना चाहिए। किसी भी देश–समाज का लोकगीत उस स्थान के लोगों के हृदय का उद्गार है। इन लोकगीतो में भारत की आत्मा मुखर होकर बोलती है। लोकगीतों के भीतर छुपी भावों की व्यापकता एवं सौंदर्य इनके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वयं परिलक्षित करती है।

हमारा देश ऋतुओं, नदियों, वनों, पर्वतों तथा विभिन्न जाति, भाषा, धर्मों का देश है। अपनी–अपनी भाषा में प्रत्येक, जन–समुदाय ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों का वर्णन उनके लोकगीतों में अभिव्यक्त है।

लोकगीतों में भोजपुरी लोकगीतों का स्थान सर्वोपरि है। बिहार प्रदेश में बोली जाने वाली मुख्य रूप से कुछ भाषायें भोजपुरी, मैथिली एवं मगही में, भोजपुरी सर्वाधिक प्रचलित भाषा है जो सम्पूर्ण बिहार के साथ–साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा देश के बाहर भी बोली जाती हैं। भोजपुरी साहित्य, भाषा, बोली पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन किया है। जिनमें ग्रियर्सन, पं0 राम नरेश त्रिपाठी, डा0 उदय नारायण तिवारी, राहुल सांस्कृत्यायन, डा0 भोलानाथ तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रास बिहारी पाण्डेय, श्री कृष्ण दास इत्यादि मुख्य हैं।

'भोजपुरी' नामकरण के सन्दर्भ में अनेक मत हैं परन्तु स्पष्ट रूप से इसका सम्बन्ध बिहार प्रान्त के बक्सर जिले में स्थित 'भोजपुर' नामक गाँव से है। 'नयका भोजपुर' तथा 'पुरनका भोजपुर' के नाम से दो गाँव आज भी स्थित हैं। विद्वानों की मान्यता है कि भारत वर्ष ग्राम–गीतों की सम्पत्ति में संसार के अन्य देशों से सबसे अधिक धनवान है और भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा 'भोजपुर' प्रान्त की उर्वरा भूमि इस दृष्टि से सबसे अधिक समृद्धशालिनी है। इस भाषा में लोकगीतों का अनन्त भण्डार है।

भोजपुरी लोकगीतों की प्राचीनता, भाव–सम्पन्नता एवं मधुरता बरबस ही ध्यान आकृष्ट करती हैं। विषयों की विविधता, भाव–सौन्दर्य, रस–परिपाक तथा समाज के अन्तर्मन की पुकार इन लोकगीतों की निजी

विशेषता है। इन गीतों में लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन गीतों से जन मानस का सीधा संस्कारगत सम्बन्ध होता है। प्रत्येक उत्सव, पर्व, तीज–त्यौहार के अवसर पर समयानुकूल गीत गाकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर मनोविनोद करना दिनचर्या का अभिन्न अंग है।

इन लोकगीतों का महत्व समझने के लिये इन गीतों के पीछे छिपे सामाजिक–आर्थिक तत्वों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। इन लोकगीतों में कहीं काले बादलों का स्वागत है, कहीं खेती की हरियाली पर खुशी व्यक्त की गयी है, कहीं सामाजिक जीवन की रूढ़िवादिता एवं कुरीतियों पर प्रहार है, कहीं पारिवारिक जीवन की विषमता एवं त्रासदी का दुःख है, कहीं धरती माता, सूरज देव तथा चन्दा मामा की बातें हैं, कहीं नदी–पोखरों वनों, पर्वतों की पूजा तो कहीं देवी–देवताओं की मनौतियां भी मानी गयी हैं। प्रकृति की पूजा के साथ इस देश को हरा भरा तथा समृद्धिपूर्ण रहने की कामना भी की गयी है।

विविधता से परिपूर्ण हमारा देश भौगोलिक दृष्टिकोण से अतुल खनिज सम्पदा से समृद्ध है तथा प्रकृति के असीमित रहस्यों से मरा हुआ हे। इन जीवन रक्षक तत्त्वों को बचाकर ही अपने जीवन को समुन्नत एवं सुखी बनाया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि हमारा पर्यावरण शुद्ध, प्रदूषण रहित हो। भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति का ही पर्याय है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन कला–कौशल, ज्ञान–विज्ञान, पूजा–उपासना सभी का समावेश होता है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चेतना व पवित्रता पर विशेष ध्यान दिया गया है। हिन्दू संस्कृति सत्य–अहिंसा, तप–सेवा के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण तथा विश्व–बन्धुत्व की भावना में विश्वास रखती है।

शाब्दिक अर्थ यदि ग्रहण किया जाये तो पर्यावरण का अर्थ, परि + आवरण त्र पर्यावरण अर्थात् चारों ओर छाया आवरण। हमारे चारों ओर का वातावरण जिसमें हम सांस लेते हैं, जिनमें वायु, जल, धरती, आकाश, ध्वनी इत्यादि से युक्त पूरा प्राकृतिक वातावरण आ जाता है। प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं एवं मानव में एक सन्तुलन विद्यमान है जो हमारे अस्तित्व का आधार है। ''क्षिति–जल–पावक–गगन–समीरा''– इन पंचभूत तत्वों से हमारा शरीर निर्मित है और इसके संतुलन से ही हमारा जीवन संतुलित रह सकता है। सुखमय जीवन जीने के लिये स्वस्थ शरीर का होना अति आवश्यक है और हम स्वस्थ तभी रह सकते हैं जबकि हमारे आस–पास का वातावरण और परिवेश स्वस्थप्रद एवं लाभप्रद हो। स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक है कि हम पर्यावरण से अपना संतुलन स्थापित करें।

भारतीय संस्कृति के मान्यतानुसार– **''माता भूमौ पुत्रोऽहं पृथिव्याः''** अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ। स्पष्ट है कि पृथ्वी के प्रति हमारा भी वहीं कर्त्तव्य है जो माता के प्रति पुत्र का होता है।

प्राचीन काल से ही लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक रहने एवं सचेत रहने के लिये सदैव प्रेरित किया जाता रहा है। हमारे ऋषि मुनियों ने पर्यावरणीय चेतना को जन–जीवन से जोड़ दिया था। उनका दृष्टिकोण गहन एवं व्यापक था। वेदों में भी ऐसे कई सुझाव दिये गये हैं कि किस प्रकार से हम सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये प्रकृति के सहयोग से काम करें। ये सुझाव आज भी उतने ही सार्थक हैं जितने तब थे। पूर्व में लोगों को ज्ञान देने एवं जागरूकता उत्पन्न करने में कथा–प्रणाली का महत्वपूर्ण स्थान था। बाद में यह स्थान विशेष रूप से लोकगीतों ने ले लिया। भोजपुरी लोक गीतों में प्रकृति के इन सभी जीवन रक्षक तत्वों के

संरक्षण का विशद् चित्रण मिलता है। वन–सम्पदा यथा वृक्ष, पेड़–पौधे वन्य जीवों, पशु'–पक्षियों के प्रति आस्था इन लोक–गीतों में स्पष्ट दिखता है जो पर्यावरणीय चेतना का प्रतीक है, यह सशक्त माध्यम एवं उदाहरण है तथा उन्हें संरक्षित एवं सुरक्षित रखने का पुरजोर प्रयास है।

सर्वप्रथम वृक्ष अथवा पेड़ पौधों की चर्चा करेंगे। पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों में भी प्राण एवं संवेदनशीलता होती है, इस तथ्य से सभी परीचित हैं। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है वेदों–पुराणों में भी इनका विवरण पाया जाता है। एक खेतिहर किसान इन पेड़–पौधों की भाषा को अच्छी तरह समझता है। बदलते मौसम की खबर, पौधे, परिन्दे उसे पहले ही दे देते हैं। वह इस तथ्य से बखूबी परीचित होता है कि पेड़–पौधों में भी जीव का वास होता है।

आज भी धार्मिक अनुष्ठान व व्रत–पर्वों के अवसर पर विशेष रूप से अनेक वृक्षों की पूजा का विधान जन–जीवन में पाया जाता है। महिलायें विभिन्न अवसरों पर पीपल, वट, बरगद, नीम, तुलसी, केला इत्यादि की पूजा पूरे मनोयोग से करती हैं। अनेक लोकगीतों में इनके संरक्षण को ध्यान में रखते हुए उनकी महत्ता को जनमानस से परीचित कराया गया है। भोजपुरी लोकगीतों में इनका चित्रण इनकी महत्ता को स्वतः चित्रित करता है।

किसी भी मांगलिक अवसर पर गाने की शुरूआत देवी गीतों से ही होती है। इन देवी गीतों में आम, नीम, अनार, इमली, बेल, नीम, पीपल इत्यादि का वर्णन अधिकांशतः पाया जाता है–

निबिया की डार मईया मोरी
झूलेली झुलुवआ हो कि झूलि–झूलि ना
मईया मोरी गावेली गीतिया
हो कि झूलि–झूलि ना .....

तथा

नेबुला की गाछ वही निकली भवानी,
इमली की गाछ वही निकली भवानी
हाय नेबुला फूलवो न लागे महारानी।
अमवा की डाल वही निकली भवानी,
हाय अमवा बौरौ न लागे महारानी।

तथा

देवी के दुवरे हरियर पीपर, लाल धजा फहराये भाया,
मईया के दुआरे अन्हरा पुकारे, देहु नयन घरि जाये भाया,

इसी तरह तुलसी वृक्ष का भी महात्म्य इन गीतों में वर्णित है। मान्यता रही है कि आंगन में तुलसी का पौधा लगाने से वहाँ का वातावरण शुद्ध एवं प्रदूषण रहित रहता है। आज भी घर–घर में तुलसी का पौधा प्रायः पाया जाता है।

छठी माता के एक गीत में तुलसी का वर्णन इस प्रकार है–

नदिया के तीरे–तीरे तुलसी मांग बाती
पुजेली गउरा देई जनम ऐहिवाती
ए छठी माता, करब राउर सेवा ऐ छठी माता

तथा

कहवाँ लगईबो हम तुलसी, कहाँ रे बेल पत्र न हो
बहिनी कहंवा लगईबो गहबर गेन्दवा न हो।

हरे बांसों की महत्ता को भी इन लोकगीतों में चित्रित किया गया है। माड़ो छवाने के एक गीत में–

हरियर बंसवा कटईह मोरे बाबा,
हो रस भीजेला माड़ो।
छाईला हरियर बांस हो,
रस भींजेला माड़ो।

कटहल के पेड़ व उसकी डाल का वर्णन कजरी गीतों में प्रायः मिलता है–

हमरा ही बाबा के कटहर के गछिया से
कटहर में लागल बा झुलुअवा, हाय रे सांवरिया,
चार सखी अगवा हो, चार सखी पछवां से
चार सखी पटरा के बिचवा, हाय रे सांवरिया

चन्दन की लकड़ी का वर्णन भी पाया जाता है। 'नहावन' के एक गीत में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है–

''चन्दन काठ के चउकियां त मोतियन झालर हो।
ओही पर राम नहाले त सीता रानी निरखेली हो,
पूछेली सखिया सलेहर, सीता से पूछेली हो।
सीता कवन–कवन जप कईलु रमईया बर पावेलु हो।

लवंग के पौधे का वर्णन इस विवाह गीत में इस प्रकार किया गया है–

''मोरे पिछुवड़वा लंवगिया के गछिया
लवंग चुनेली सारी रात जी
लंवग चुनिअ चुनी सेजिया लगवली
बिचवा में पाकल पान जी''

इसी तरह कजरी झूमर गीतों लौवग, इलायची से सजे हुये पान के बीड़े का वर्णन प्रायः पाया जाता है–

''लवंग–ईलाची क बीड़ा लगाये।
चाहे भइया चाभे चाहे जाये
सवनवा में ना जइबो ननदी

महुआ का वर्णन भी कुछ इस तरह किया गया है–

''महुआ के फूल झरे पलकन के छईयां
सारी रात महके बलम तोरी नेहिया''

अनेक होरी एवं चैती के गीतों में शंकर के साथ भांग–धतूरे का वर्णन अवश्य पाया जाता है–

''कालेके शिव के मनाई हो शिव मानत नाहीं,
पुड़ी–मिठाई शिव के मनही न भावे
भंगिया धतूर कहाँ पाई हो–

तथा–

''अरे रामा सांझे के सुतलका
भईल भिनसहरा हो रामा
उठ गउरा, भंगिया रगरि पियाव हो रामा–

अन्न का भी वर्णन इन गीतों में दिखता है। जंतसार के एक गीत में सरसों का वर्णन–

''मोरे पिछुअरवा सरसोईया, हहर–झहर करे हों,
रामा ताहि तरे सोवे पियवा पातर कि
निंदियों न आवेला हो।''

विवाह के अवसर पर हल्दी के समय चुमाने के गीत में इसी प्रकार धान, चावल व दूब का वर्णन मिलता है–

''साठी क चउरा, लहालही दूब रे
चुमेली अम्मा रानी देवेली असीस रे
मथवा चुमिय चुमि दीहली असीस रे
जियहुँ सुनर दुल्हा लाख बरीस रे
असरे जियहूँ जईसे धरती क धान रे।
ओसरे बढ़हूँ जईसे दुइजी क चान रे।''

फूलों व फलों का विशद् विवरण इन लोकगीतों के विभिन्न प्रकारों में यत्र–तत्र मिलता है। आम, केला, संतरा, नारियल इत्यादि का वर्णन अनेक ''सोहर'' गीतों में पाया जाता है–

'मचिया ही बइठेली सासू त बहू से अरज करे हो
बहुवा कवन–कवन फल खइलू होरिलवा बड़ा सुन्दर हो,

खईली मैं अमवा इमिलिया, धवद फल केरवा न हो

सासु छिलिछिली खइली नवरंगिया

सासु फोरि–फोरि खइली नरियरवा

होरिलवा बड़ा सुन्दर हो–

इसी प्रकार ''चैती'' गीत में विभिन्न फूलों का विवरण हैं–

सब बन अमवा फुलईले हो रामा, सइंया नाही अईले,

अमवा फुलइले, महुअवा फुलइले

बेला फुलइले, चमेला फुलइले

सुरख गुलाब फुलइले हो रामा, सईया नाहीं अइले।

फागुन के माह में फाग के अवसर पर गाये जाने वाले 'फगुआ' गीतों में हास–परिहास के संवादों को बड़े ही खुबसूरत ढंग से चित्रित किया गया है। समस्त टोले–मोहल्ले की भौजाईयां देवरों के व्यंग्य बाण से वंचित नहीं रह पाती हैं। ऐसे ही एक परिहास का वर्णन इस फगुआ में मिलता है जिसमें तरकारी बेचने का वर्णन है–

''रतिया खटक गईल खटकिनियां

दिनवा बेचे बइरिया ना

आलू बेचे भंटा बेचे और बेचे मुरईया

बीच बजार में टेढ़ी मारे

इ खटकिन हरजईया

रतिया खटक गईल खटकिनिया

दिनवा बेचे बईरिया ना।

इसके पश्चात् हम पशु–पक्षियों की महत्ता का वर्णन इन लोकगीतों में पायेंगे। प्रारम्भ से पशु धन को शान–शौकत, कुल की सम्पन्नता का एक अहम अंग माना जाता था। बेटी के विवाह में दान दहेज के रूप में पशु धन देने की प्रथा रही है। विवाह के अवसर पर 'खिचड़ी' खाने के रसम पर गाये जाने वाले गीतों में इस तरह का वर्णन प्रायः पाया जाता है–

''गईया में दिहलो भईसिया ऐ बेटी

अवरू बरध धेनु गाय रे

ऐतना दहेज हम बेटी के दिहली

काहे तूहू रूसेल दमाद हो।''

इसी तरह कजरी गीत में भी वर्णन है–

''हरे रामा गईया चरावे धनश्याम

बसुरिया बजावे रे हरि''–

हाथी–घोड़ा जैसे पशुओं को रखना भी आर्थिक रूप से सुदृढ़ एवं धन सम्पन्न होने की निशानी समझी जाती थी।

बेटी का बारात जब दवाजे पर आता था तो द्वार पर हाथी, घोड़े देखकर बराती लड़की वाले की सम्पन्नता का वर्णन करते थे। विवाह गीत में–

''जब बरियतिया गोइड़वे में आवे, हथिया करेला चिघाड़

बाबा मड़उवा धइले ठार, आहो रे बेटी रहना कुँआर।

इसी प्रकार जब बारात के साथ हाथी–घोड़ा आता है तो उसका भी वर्णन इन गीतों में हैं–

''कहँवा में रखबो हाथी से घोड़ा,

कहवाँ में रखबो सजन लोग हो।

दुअरे में रखबो में हाथी से घोड़ा,

मड़वा में रखबो सजन लोग हो।''

छठी गीत में भी इनका वर्णन है–

''हथिया के हउदा कसईबो, घोड़वा ए के लहास

ताहि घोड़वा आवेले महादेव छठी पूजन जाये

उखिया के खम्भवा गड़इबो ओह पर नेतने ओहार

गजमोती चउका पुरईबो चउमुख दियना बराये

ताहि चउके बइठेली गउरा देई छठी पूजन जाये।''

इनके अतिरिक्त कुत्ते व खरगोश का वर्णन भी 'गारी' जैसे गीतों में पाया जाता है, जैसे–

''जइसे कुकुरा के पोंछ

ओइसे भसुर जी के मोंछ।'' तथा

एही बरियतियन के खगगोश अईसन कानरे,

एही काने सुने अइले गीतिया हमार रे''

इन पशुओं के अलावां ऐसे हिंसक पशुओं का वर्णन भी बड़े ही रोचक ढंग से जीवन से जोड़कर किया गया है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'सोहर' में एक बाघिन और बांझिन औरत के संवाद का वर्णन इस प्रकार है–

''सासु मोरी कहेली बझीनिया, ननद ब्रजबासिन हो

ललना जिनके हम बारी बियाही, त घर से निकालेल हो।

घर में से निकले तिरियवा त बन बीच ठाढ़ भईली हो

ललना बन में से निकले बघीनिया त सुख दुःख पुछेले हो,

तिरिया कवन बिपत तोहे पड़ले, कवन दुःख रोवेलु हो

सासु मोरी कहेली बझीनिया, ननदी ब्रजबासिन हो

बाघिन जिनके मैं बारी बियाही, त घर से निकालेल हो,

मत रोव एतिरिया मत रोव, हम नाही खाईब हो,

तिरिया जब हम तोहरा के खाईब, हमहू बांझिन होइब हो।

इसी प्रकार के अन्य 'सोहर' में नागिन और बाझिन स्त्री के दुःख–दर्द का सुन्दर चित्रण हुआ है–

घर में से निकलेली बहुवा बिरिछ तरे ठार भईली हो

ललना बिल में से निकले नगिनिया

बहुवा मुहवाँ चितवे ले हो।

काहे तोरा मुखड़ा धुमिल भईल, नयनन नीर बहे हो

किया तोरा कंता बिदेसे गइले, किया नईहर दूर बसे हो

बहुवा काहे नयन नीर बरसे कहहूं दुःख हमसे ना हो

नाही मोरा कंता बिदेसे गइले, नाही नईहर दूर बसे हो

नागिन कोरिवया के दुःख बड़ा भारी सहल नाहीं जाला हो

चुप रह ए बहुवा चुप रह नयन पोछ डाल हो बहुवा

दसवें में होई हे नन्दलाल महलिया उठे सोहर हो।''

एक सोहर गीत में हरिनी इसलिये व्याकुल है कि राजा उसके हिरन को मारकर अपने घर ले जायेगा, क्योंकि उसके घर पुत्र ने जनम लिया है। इस व्यथा से पीड़ित हिरनी से हिरन उसकी इस पीड़ा का कारण पूछता है। इस स्थिति का सुन्दर चित्रण, हिरन–हिरनी का भावपूर्ण्ज्ञ संवाद का वर्णन इस सोहर गीत में चित्रित किया है–

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहबर हों,

अरे ओही तरे ढाढ़ हिरनिया त मन अति अनमन हो

चरत ही चरत हरिनवा त हरिनी से पूछेला हो,

हरीनी काहे तोहार चरहा मुराइल कि पानी बिनु झुराईल हो।

प्रारम्भ से ही कथा–प्रणाली के अन्तर्गत तोता–मैना, काग, कोयल, कबूतर, भंवरा इत्यादि को प्रतीकात्मक रूप में मानवीकरण के माध्यम से जनमानस के अत्यन्त सन्निकट माना जाता था। लोगों का पक्षी–प्रेम इतना स्पष्ट था कि वे पक्षियों की भाषा को आसानी पूर्वक समझ जाते थे। अपने सुख–दुःख को वे पक्षियों से भी बाँटते थे। पक्षियों के बोलने, चहकने, उठने–बैठने से अभिव्यक्त सभी बातों को जनमानस स्वतः समझ जाते थे। कागा जब छत की मुंडेरे पर बोलता है तो आज भी यह समझा जाता है कि कोई आने वाला है। कबुतर से संदेश भेजने की प्रथा से सभी परीचित हैं। अतः भोजपुरी लोकगीतों में इनका वर्णन आम जनमानस के जीवन के अभिन्न अंग के रूप में मिलता है।

एक देवी गीत में सुग्गा अथवा तोता से आग्रह किया गया है कि वह गंगा पार से देवी को बुला लाये–

''उड़ि जा रे सुगन गंगा पार बोलाई लाओ देवीन को

सोने की थाली में जेवना परोसो

उड़ जा रे सुगन गंगा पार जेवाय लाओ देविन के

तथा छठ गीत में भी ऐसा वर्णन है कि सुग्गे को मना किया जाता है कि वह केले के पेड़ पर न बैठे क्योंकि केले को छठी माता को चढ़ाना है–

''केरवा जे फरेला गवद से, ओह पर सुग्गा मँडराये

सुगना के मरबो धनुक से, सुग्गा गिरि मुरूझाये

सुगनी जे रोवेले बिरग से आदित होखना सहाय।

इसमें छठ पर्व की पवित्रता तथा सफाई की महत्ता पर ध्यान दिया गया है। अनेक गीतों में **''अमवा के डरिया से बोले रे कोयलिया, सुगना बोलेला अनमोल रे''**– जैसी पंक्तियां बहुधा दिखाई देती है।

कोयल की बोली का बखान अनेक गीतों में मिलता है। परन्तु चैती के इस गीत में एक स्त्री कोयल से शिकायत करती है कि उसकी बोली सुनकर उसके पति की नींद टूट गई–

''बोलिया सुनत सैंया जागे हो रामा

कोईलर तोरी बोलिया–

रोज–रोज बोले कोइलर संझवा बिहनवा

आज बोले ले आधी रतिया हो रामा

कोईलर तोरी बोलिया–

वहीं पर चैती के एक गीत में कागा को संदेशा लाने के लिये, आग्रह किया गया है–

''तोहरो के देबो कागा दूध–भात कटोरवा

लेई आव पिया के सनेसवा हो रामा।

होरी के एक गीत में बगुला, मोर, पपीहरा का वर्णन भी मिलता है–

मुख चुवे गुलाल, मुख चुवे गुलाल,

चल बलम ओही बगिये में।

कहंवा बोले बगुलवा, बगुलवा बगुलवा

कहंवा बोले मोर, कहंवा बोले पपीहरा

कहंवा संइया मोर चल बलम ओही बगिये में।

तलवा बोले बगुलवा, बगुलवा, बगुलवा

बनवे बोले मोरे, नदी किनारे पपीहरा

सेजिये सईंया मोर, चल बलम ओही बगिये में,

अन्य गीत के एक प्रकार झुमर में भँवरा का वर्णन भी है–

''छोटी बड़ी है रसरिया, गगरिया ना डूबे डूबे ना,

फूलवा चुनन के बागों गयो जी

चुनने न पाइ दो चार फूलवा

बलम–भँवरा बन के आ गये ना।

इसी प्रकार एक दूसरे झूमर–गीत में पत्नी अपने पति से शिकायत कुछ इस प्रकार करती है–

''राजा चले रे बजरिया हाय जिया जर गये हमार

सास के लाये तोता, ननद के लाये मैना

हमको ले आये बन्दरिया हाय जिया जर गये हमार

सईया चले रे बजरिया हाय जिया जर गये हमार।

चील जैसे पक्षी से भी अपने पति को सन्देसा भेजने की बात कई गीतों में की गई है। 'सोहर–गीत' जो पुत्रोत्सव पर गाया जाता है और आनन्द का प्रतीक है, इसमें एक गर्भवती स्त्री अपने दूर–देश रह रहे पति को सन्देशा भेजवाती है।

''अकासे क चिलिया अकासे उड़े

अवरू पताले उड़े हो

चिलिया हमरो सन्देसा लेले जाहु

कहिह बनजरवा आगे हो

केथुन के हउवन कोठवा, केथुन केरा छाजन हो

रनिया कवने बरन बनजरवा त कईसे जगाईब हो

सोने के हउवे उनकर कोठवा पनेही केरा छाजन हो

चिलिया संवर बदन बनजरवा जगाई के कईहहू हो।

वर्षा ऋतु के आगे पर, वर्षा न होने पर समस्त मानव तो व्याकुल होता ही हैं, पशु–पक्षी भी व्याकुल हो जाते हैं। ऐसी ही व्याकुलता इस सोहर गीत में हंस–हंसीनि की है जिन्हें पानी न बरसने के कारण मछली खाने को नहीं मिल पा रहा है–

''हंस–हंसीनिया मन धूमिल अवरू मन व्याकुल हो

हे ललना, दुलुभ भईल चेलवा मछरिया, दुलुभ भईल झेंगवा ना हो

सांझ हो मेघवा घहरललन, आधी रात बरसेले हो

ललना लउके लागल चेलवा मछरिया

डुबकिया मारे झेंगवा ना हो

हंस–हंसीनिया मन आनन्द अवरू मन बिंहसेला हो

ललना मिलि गईले चेलवा मछरिया

मिलिय गईल झेंगवा न हो–

पानी बरसने के पश्चात् हंस–हंसीनी की खुशी की अभिव्यक्ति भी की गई है। यदि मछलियों की बात करें तो चेलवा, झेंगवा मछली के साथ–साथ रोहू मछली की बात भी कई गीतों में मिलती है। झूमर के एक गीत में–

''कोठे उपर कोठरिया रे नीचे बहे दरिया

ओहू में रोहू मछरिया रे, पिया डाले कंटिया।''

इस प्रकार भोजपुरी लोकगीतों में इन सभी के संरक्षण का चित्रण मिलता है। किसी न किसी रूप में वन्य जीवों एवं पशु–पक्षियों के प्रति आस्था इन लोकगीतों में स्पष्ट दिखता है। जो पर्यावरणीय चेतना का उदाहरण है।

भारतीय संस्कृति में भी विभिन्न पशु–पक्षियों को किसी न किसी देवता का वाहन मानकर, उनकी महत्ता को स्वीकार कर, उनको संरक्षण प्रदान किया है यथा भगवान शंकर का नन्दी, माँ सरस्वती का हंस, लक्ष्मी जी का उल्लू, गणपति का चूहा, माँ दुर्गा का सिंह, विष्णु भगवान का गरूड़, यमराज का भैंसा, तथा पृथ्वी का शेषनाग इत्यादि। धर्म से जोड़कर पूजा–पाठ के माध्यम से इन सभी का महत्व प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है।

क्षिति–जल–पावक–गगन–समीरा के अन्तर्गत क्षिति का अर्थ धरती है। भारत में जमीन

को झाड़–पोछकर लीपने–पोतने की परम्परा रही है। अनेक अवसरों पर गोबर से भूमि को लीप–पोतकर चौक पूरने तथा रोली–हल्दी चावल–धूप–दीप से पूजा करने की अपनी संस्कृति है। ऐसी मान्यता है कि इनके द्वारा जमीन पर पड़ी हुयी गन्दगी का शुद्धिकरण हो जाता है तथा अनेक कीटाणु जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, मर जाते हैं। पूजन के अनेक अवसरों पर पृथ्वी का शुद्धिकरण किये जाने का विधान है जो इन लोकगीतों में भी स्पष्ट चित्रित किया गया है।

देवी–देवताओं द्वारा किये गये कार्यों को मानवीय रूप में चित्रित किया गया है जैसे सीताजी को राम की पत्नी के रूप में एक साधारण स्त्री की तरह व्यवहार करते हुये चित्रित किया गया है–

''सीता ने आंगन पोतेली, धनुक उठाये

राजा जनक प्रन राखे सुनहू मोरी रानी

जे यह धनुक उठइहे से ही हो सीता ब्याहन हो।''

इसी प्रकार एक 'विवाह–गीत' में –

''गाई के गोबर, पियर माटी अरे माई दहकि–दहकि

आंगन लीपि, सीता रे जोगे बर नाहीं

केई खोजेला वर, केई पूजेला वर अरे माई

केई उनकर तिलक चढ़ावे, सीता रे जोगे बर नाहीं –

'विवाह' जैसे संस्कार के अवसर पर अनेक 'मंगल–तिलक' गीतों में–

''गाई के गोबर मंगाई, त अंगना लिपाई

अरे माई गजमोती चउका पुराई, त पुजीला सुन्दर वर''

जैसी पंक्तियां बहुधा सुनाई देती हैं।

जल के रूप में वरूण देवता की पूजा के साथ जल के समस्त स्रोतों जैसे–सागर, समुद्र, नदी, पोखरा, ताल–तलैया, कुँआ, तालाब इत्यादि की पूजा का विधान तथा इनकी महत्ता लोकगीतों में विभिन्न मांगलिक अवसरों पर दिखाई देती है। यों समझा जाये तो कुआँ खोदवाने, तालाब–पोखरा खनाने तथा बाग–बगीचे लगाने की प्रथा सदा से रही है। जो सीधे धर्म से जुड़ी थी, मानवता से जुड़ी थी। इन सभी कार्यों को करने में जनकल्याण की भावना निहित रहती थी। इन सभी को सुरक्षित रखने तथा पर्यावरणीय परिवेश को हितकारी बनाये रखने के उद्देश्य से ही विभिन्न मांगलिक अवसरों पर इनके पूजा का भी विधान था। आज भी विवाह अथवा मुंडन संस्कार के अवसर पर कुँआ पूजने तथा पोखरा पूजने का रिवाज है। अनेक व्रत–त्यौहारों पर भी महिलाओं के नदी नहाने की परम्परा है।

गंगा नदी की महत्ता अनेक गीतों में वर्णित रहती है। गंगा नहाने पर परलोक की प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता समस्त भारतवासियों की है।

''गंगा नहाई, सुरूज करी बिनतीं– जैसी पंक्तियां अनेक गीतों में मिलती हैं। 'बारहमासा' गीत में भी इन नदियों का वर्णन है–

''एहपार गंगा कि ओह पार जमुना, बीचे कदमिया के गाछ रे

ओही गाछ उपर काग बोले, बोले बिरहिया के बोल रे।

काग रे तोहे पाग देबो जबरे सजन घर आवहीं।

तथा ऐसे ही

''गंगा–जमुनवा के निर्मल पानी .....

सूहे हो अम्मा जुड़ावेली छाती, सुहे हो.....

इसी तरह एक विवाह–गीत में ऐसा प्रसंग है जिसमें बेटी का विवाह सात समुंदर पार करने की बात की गयी है–

''बाबा ही रे धन लोभी त धनवा लोभाई गइले

बेटी बियहले दूर देस सातों रे नदिया आँतर– ''

सोहर के एक गीत में बांझिन स्त्री गंगा मईया से अरज करती हैं कि वह अपनी आगोश में उसे ले लें क्योंकि बांझिन होने की पीड़ा वह नहीं सह पायेगी और समाज उसे ताना देगाा जो उसके लिये असह्य है। इस प्रकार गंगा मईया को अपनी पीड़ा और दुःख का भागीदार बनाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करती हैं–

''गंगा जी के ऊँची अड़रिया, तिवईयां एक रोवेले हो,

मईया अपनो लहरिया हमके देतु त हम धसि मरती न हों,

किया तोरे सासु–ससुर दुःख किया नईहर दूर बसे हो

ए तिवई किया तोरे सईया परदेस, कवन दुःखे रोवेलू हो,

नाहीं मारे सासु–ससुर दुःखे, नाहीं नईहर दुर बसे हो

मईया नाहीं मोरे सईया परदेस, कोखिया दुःखे रोईले हो

चुप रहू ए तिवई चुप रह जनि रोई मरहूँ न हो

ए तिवई अपनो बलक हम मारब तोहरो जियाईब हो''।

इस तरह एक विक्षुब्ध नारी के दुःख का निवारण करने को माँ गंगा भी तत्पर हैं। अर्थात् गंगा मईया उसके इस दुःख से द्रवित होकर उसे सान्त्वना देती हैं। इस प्रकार पतित–पावनी गंगा जो मानव का उद्धार सदा करती रही हैं और करती रहेगी। इस प्रकार नदियों में देवत्व भाव का निरूपण किया गया है। तीर्थ–व्रत तथा सोहर इत्यादि गीतों में वांछित फलदायिनी तथा पतित पावनी नदियों की महिमा अत्यधिक श्रद्धापूर्वक वर्णित की गयी है। लोक जनजीवन से जुड़कर उनकी सुरक्षा सर्वोपरि है। लोकगीतों में नदियों का गान पर्यावरण चेतना का प्रतीक है।

पोखरा खनाने का वर्णन भी यत्र–तत्र गीतों में मिलता है। विवाह के एक गीत में–

''कहवां के राजा रे पोखरा खनावेल

रेवती–रेवती बान्हे घाट रे

कहवां के राजा रे बियहन आवेल

घुमड़ी–घुमड़ी खोजे घाट रे–''

विवाह के अवसर पर कुआँ पूजने का विधान है। झूमर गीतों में कुआँ पनघट का वर्णन बहुतायत से मिलता है–

''गोरी धीरे चल गगरी, छलकियो न जाये।

गहीर कुईयां, पतालों में पानी

गोरी रेशम के डोरिया, सरकियो न जाये।

इसी प्रकार भाई–दूज त्यौहार पर जो गोबर्धन पूजा होती है, उस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में उस पर्वत की महत्ता वर्णित होती है। गोबर से बनाये गये देवता रूप गोबर्धन की पूजा करते समय महिलायें गीत गाती हैं–

''उठहु ए देव उठहु हो सुतले भईल छव मास

तोहरे बिन बारी न बिअँहीला हो

बिअहल ससुरे न जासु–''

इस प्रकार विभिन्न पर्वों एवं धार्मिक तथा मांगलिक अनुष्ठानों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों, नदियों, कुआँ–तालाबों तथा प्रकृति के प्रति भी स्तुत्य भाव का प्रकटन लोकमानस की उपज है। तथा इस भाव के पीछे छिपा है पर्यावरणीय चेतना का रहस्य। पूर्जा, अर्चना, प्रातःभ्रमण, नदी स्नान, ब्रह्म मुहूर्त में उठना तथा सूर्योपासना इत्यादि भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं तथा साथ ही पर्यावरणीय चेतना। घर की गृहणियां नित्य ब्रह्म

मूहूर्त में उठकर घर की सफाई करती है। इससे तन–मन की पवित्रता बनी रहती है।

जीवन के लिये चन्द्र–सूर्य की महत्ता निर्विवाद है। इन्हें जीवनदायिनी शक्ति के रूप में पूजा जाता था। प्रातः काल नहाकर सूर्य को अर्घ्य देने तथा प्रणाम करने की परम्परा प्रारम्भ से हमारी संस्कृति में रही है और आज भी कायम है। इसकी महिमा का वर्णन एक सोहर गीत में इस प्रकार है कि ननद अपनी भाभी से सुन्दर पुत्र होने का कारण पूछती है तो भाभी उसे बताती हैं कि सबेरे नहाकर सूर्य पूजा करने से उसे सुन्दर और स्वस्थ पुत्र की प्राप्ति हुयी–

"घर में से निकले ननदिया त, भउजी से पुछेले हो

ए भउजी कवन जतन तुहु कइलु, बलकवा बड़ी सुन्दर हो

माघ ही पूस के महिनवा न, गंगा नहइली अगिनी नाही तापीला हो

ननदी निहुरी सुरज गोड़ लगली होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।।

एक और गीत में बेटी का बदन सूर्य की ज्योति से कुम्हला जाने पर पिता के दुःख का वर्णन है। विवाह–गीत में यही भाव वर्णित है–

"जेठ बईसखवा के जरती भूभूतिया रे,

सूरूज उगेला चटकार रे।

सुरूज के उगले धीया कुम्मीलइली

बाबा के बिहरे करेज रे।

तथा बेटी का दहेज जुटा पाने में असमर्थ पिता व्यथित होकर सूर्य से प्रार्थना करता है कि निर्धन अवस्था में कन्या का जन्म ना हो और यदि हो तो उसे भगवान सम्पत्ति भी दें–

"गंगा पइठि बाबा सुरूज मनावेले

मोरे घर धीया जनि होय रे

धियवा जनम जब दीह विधाता

जब घरे सम्पति होय रे–"

एक अन्य विवाह गीत में भाई ससुराल में अपनी बहन के धुमिल सुरत को देखकर व्यथित हो जाता है तथा इसकी उलाहना वह अपने बहनोई को देता है–

"चाँद–सुरूज जईसन बहीनी संकलपो रे ना

से हो जरि जरि भइली कोइलिया रे ना"–

सूर्य की तरह ही चन्द्रमा की महत्ता स्वीकार कर जनमानस के जीवन से उसका अटूट सम्बन्ध बताया गया है। 'चन्दा मामा' कहने की प्रथा आज भी है और हमेशा रहेगी। अपनी शीतलता से सभी को रससिक्त करने वाला चन्द्रमा बच्चों के लिये हमेशा खिलौना ही रहा। आज भी बच्चों को सुलाते समय लोरी गाई जाती है–

"ए चन्दा मामा आरे आव, बारे आव

नदिया किनारे आव, सोने के कटोरवा में

दूध भात लेले आव

बबुआ के मुँह में घूटूक ....."

वहीं दाम्पत्य जीवन के सुमधुर क्षणों में भी चाँद को अपना साथी बनाने का वर्णन इन लोकगीतों में मिलता है –

एक प्रेम गीत में ऐसा ही भाव उल्लिखित है–

"आव हो चन्दा मामा आव हो अजोरिया

बीती जाला रतिया सुहानी

बलम रउवा लगवे त बानी।"

यदि देखा जाये तो हजारों भोजपुरी लोकगीत ऐसे मिलेंगे जो पर्यावरणीय महत्त्व के दृष्टिकोण से सभी तत्वों को अपने आप में समेटे हुये हैं। लोक जीवन से जुड़े ये लोकगीत सदैव समाज को चारों ओर से जागरूक एवं प्रेरित करते रहे हैं। भारतीय संस्कृति सदैव से पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती रही है।

प्रकृति में वायु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं में मानव के साथ एक संतुलन विद्यमान है जो हमारे अस्तित्व का आधार है। इनके संतुलन से ही हमारा जीवन संतुलित रह सकता है। अतः इन तत्वों की सुरक्षा व संरक्षा करना हमारा दायित्व है।

'पर्यावरण' प्रकृति प्रदत्त अमूल्य निधि है। इस अमूल्य निधि को संजोकर रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। यदि हमने इनका दुरूपयोग किया तो ये हमारे जीवन के लिये रक्षक की जगह भक्षक हो सकते हैं। प्रदूषित पर्यावरण का मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि की समस्या तथा अंधाधुन्ध वैज्ञानिक प्रगति है। सुख समृद्धि की चाह में हम उन्हें ही विनष्ट कर रहे हैं जो हमारे जीवन का आधार है।

इस यंत्र युग में पर्यावरण विनाश अपने चरम पर है। आज पर्यावरण से अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण कोई दूसरा वैश्विक मुद्दा नहीं है। पर्यावरण की आज जो स्थिति है वह कई वर्षों का परिणाम है। जो हमारे जीवन को ग्रहण लगा रही है। यदि समय रहते इसे नहीं रोका गया तो यह हमारे लिये शाप बन सकता है। पर्यावरणीय चेतना, जागरूकता, एवं संरक्षण आज के समय की महत्वपूर्ण मांग है। भारतीय संस्कृति पर्यावरण को प्रदूषण से बनाने की जीवन पद्धति है अतः संस्कृति से विमुख न होकर अपनी संस्कृति से जुड़े रहने की आवश्यकता है। इससे हम स्वाभाविक रूप से स्वतः ही अपने पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं। प्रकृति प्रेम एवं साहचर्य की भावना से हम पुनः उस श्लोक में छिपे रहस्यों को समझाने की आवश्यकता है जिसमें विश्व के सब प्राणियों में समभाव से स्वस्थ, दीघार्यु एवं सुखी होने की कामना की गई है–

यथा,

'' सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत्।।

अस्तु।

सन्दर्भ सूची

1. व्यक्तिगत रूपसे स्व0 सीता रानी, ग्राम–भरखर, पोस्ट–मोहनियां, जिला–भभुआ, बिहार, द्वारा संग्रहित गीत।
2. भोजपुरी लोकगीत–भाग–2, डा0 कृष्णदेव उपाध्याय।
3. भोजपुरी लोक संस्कृति– डा0 श्री कृष्णदेव उपाध्याय।
4. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या– श्री कृष्णदास।
5. भोजपूरी लोक गीतों में सांस्कृतिक तत्व– श्यामा कुमारी।
6. 'सेतू' स्मारिका, प्रथम विश्व भोजपुरी सम्मेलन।
7. भोजपुरी लोकगाथा– सत्यव्रत सिनहा।
8. 'लोकवाणी' अतएव 'लोकवार्ता' पत्रिका।

Copyright © 2017, Dr. Jyoti Sinha. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.